गुरु का प्रेम पाने के लिए शिष्य क्या करे ?

जब मनुष्य दुनियाँ की परेशानियों से तंग आकर ईश्वर के दरबार में प्रार्थना करता हैं और इन साँसारिक झगडों से निकलना चाहता है और अगर उसकी दुआ सच्चे और शुद्ध हृदय से होती है तो उसकी पहुँच ईश्वर तक हो जाती है. मालिक की मोहब्बत जोश में आती है और इसका असर उन लोगों के दिलों पर पड़ता है जो अपने दिल की इच्छाओं को मेंट कर उससे लौ लगाए बैठे हैं और इस काम के लिए मुक्क़र्रिर होते हैं. वे ऐसे शख़्स के पास पहुँच जाते हैं और उससे प्रेम करने लगते हैं. जितना वे अपने आप को उसमें लीन करते हैं उतनी ही मुहब्बत इच्छुक को उनसे बढ़ती जाती है यानी जितनी मौहब्बत गुरु को शिष्य से होती है उतना ही ज़्यादा असर शिष्य के दिल पर पड़ता है जिसके प्रभाव से वह गुरु प्रेम में मस्त हो जाता है. एक मुराद होता है (जिसको गुरु स्वयँ प्यार करे) और दूसरा फ़िदायी है (जो गुरु को प्रेम करे, उस पर न्यौछावर हो). आगे मुराद और मुरीद दोंनों मिलकर एक हो जाते हैं. यह आपके सिलसिले (वंश) की बरकत है. इस सिलसिले की निस्बत (आत्मिक सम्बन्ध) माशूक़ाना है. इसमें पहले मुरशिद को प्रेम पैदा होता है और फिर मुरीद को. फिर बाद में दोनों मिलकर एक हो जाते हैं. यही असली तालीम है, यही प्रेम मार्ग है. जितना उसमें कमी रहती है उतनी ही कमी तालिब में रह जाती है. अगर दोनों मिलकर एक हो जायें तो सिर्फ नाम के लिए फ़र्क़ रह जाता है -इसी को निस्बत की मज़बूती कहते हैं. यही सच्चा प्रेम मार्ग है. यह बहुत सीधा मगर नाज़ुक रास्ता है. इसमें अपनी हस्ती बिलकुल मिटा दी जाती है और यह हालत हो जाती है जैसे मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है. सिर्फ अन्तर यह है कि मुरदे के सामने कोई लक्ष्य नहीं रहता और ऐसे मुरीद (शिष्य) के सामने अपने इष्ट का लक्ष्य होता है. मुरीद के असली मायने मुर्दा के हैं. ऐसी हालत के पैदा करने के लिए बराबर कोशिश करते रहना चाहिये. अगर वगैर ख़्याल किए खुद- ब - खुद ऐसी हालत होने लगे कि तबियत एक सी रहे, आनन्द आता रहे, दुनियाँ के अन्दर बरतते हुए ऊपर उठते हुए मालुम देवें, प्रेम और मस्ती की हालत पैदा हो जाये और दिल में बराबर दर्द उठे तो समझना चाहिये कि वह मुरीद नहीं बल्कि मुराद बन गया है. " दिल को आज़ारे मोह्ब्बत के मज़े आने लगे, उसके मैं क़ुर्बान जिसने दर्द पैदा कर दिया. "

मुरीद उस वक्त रहता है जब तक परमात्मा के दरबार में सुनवाई नहीं हुई थीं. अब उसकी सुनवाई हो गई, उसकी दुआ क़बूल हो ग . वह क़बूल कर लिया गया और अब वह मुराद है. ऐसी हालत में उसको चाहिये कि वह अपने आप को सराहे. कोशिश करो कि ऐसी दशा ज़्यादा से ज़्यादा रहे और स्थायी हो जाये. ऐसा कोई काम न करो कि जिससे यह हालत जाती रहे. इसके दो उपाय हैं - अपनी सब ख़्वाहिशों को एक ख़्वाहिश में

लगा दो, यानी सिर्फ एक इच्छा रखो और अपना इख़्लाक़ (रहनी -सहनी या आचरण) बेहतर बनाने की कोशिश में रहो. जितनी इच्छायें मिटती जायेंगी उसी क़दर मज़बूती निस्बत में आयेंगी और अपनी हस्ती गुम होकर उसी में समा जायेगी जो सबका आधार है. यही मोक्ष, निर्वाण पद, इत्यादि नामों से पुकारा जाता है. इसी को सूफ़ियों और संतों की भाषा में राज़ी -ब -रज़ा कहते हैं. यानी हर हालत में, चाहें कैसी भी हालत क्यों न हो, खुश रहना चाहिये. यहाँ पर बुराई - भलाई से निज़ात मिल जाती है. आगे भविष्य के लिए सँस्कार मिट जाते हैं. कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती है. यहाँ तक कि आख़िर में परमात्मा से भी बेनियाज़ हो जाता है. यही गीता का चौथा पद है - " तर्के दुनियाँ, तर्के उक़्बा, तर्के मौला, तर्के तर्क . "

परमात्मा आप पर अपना फ़ज़्ल (कृपा) करें और बतुफैल पीराने उज़्ज़ाम (वंश के महापुरुषों की कृपा से)अपनी इनायत और करम फरमायें. जब जब आदमी किसी से प्रेम करता है तो वह उसकी मोह्ब्बत हर वक्त चाहता है. हर समय चाहता है कि उसके पास बैठे और देखता रहे. फिर धीरे - धीरे उसकी शक़्ल अपने हृदय में रख लेता है और उसी को देखता रहता है. जिस्मानियत से आगे बढ़ता है. प्रीतम की आदतें उसमें आ जायें और जिस्मानियत और इख़्लाक़ियत (प्रकट रूप और व्यबहार) से वही बन जाये और उसी ज़ज़्बे में पुकार उठे –

" मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जौ शुदी.
ता कस न गोयद बाद अज़ी, मन दीगरम तो दी गरी ."

यानी - " मैं तू हो जाऊँ, तू मैं हो जा, मैं जिस्म बन जाऊँ और तू मेरी जान बन जाये ताकि फिर कोई यह न कह सके कि तू और है और मैं और हूँ". कभी -कभी शरीर भी एक सी शक़्ल इख़्तियार (धारण) कर लेता है. इसके बाद इख़्लाक़ (आचरण) में तब्दीली शुरु होती है. ज़िस्म की शक़्ल अब ख़्याल में नहीं आती बल्कि एक इख़लाक़ी शक़्ल सामने रहती है. पहले इंद्रिय आनन्द का मज़ा था, अब मानसिक आनन्द ह . मानसिक आनन्द कहीं अधिक, कहीं ज़्यादा लतीफ (अधिक सूक्ष्म) और देरपा (देर तक रहने वाला) और ख़ास ख़सूसियत(विशेषता) रखता है. इसी हालत को मजज़ूबियत या अवधूत गति कहते हैं. इसमें अजीब आनन्द होता है जिसके लिए इन्सान सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहता है. जब इख़्लाक़ मुक़्मिल (सम्पूर्ण) हो जाता है, यांनी दोनों की वासनायें एक हो जाती हैं, तो क़दम और आगे को बढ़ता है. आत्मा की नज़दीकी हासिल होनी शुरु हो जाती है. गुरु का ख़्याल ग़ायब हो जाता है, सिर्फ एक ख़्याल क़ायम रहता है. अजीब मस्ती सी छाई रहती है जो अपनी मिसाल नहीं रखती और दायमी (स्थायी) होती है. और फिर वह मुबारिक दिन आ जाता है जब उसे अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और वह निहाल हो जाता है. जिसने इसका अनुभव कर लिया है

उसकी तमाम इच्छायें ख़त्म हो गईं. अब न कुछ जानने को रह जाता है, न हासिल करने को. यह हालत कश्फी भी गुज़रती है और कस्बी भी. अब प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा का ग़िलाफ़ आत्मा पर से उतर जाता है और आत्मा अपनी असली हालत में ज़ाहिर हो जाती है. इसका ज़बान से वर्णन नहीं हो सकता बल्कि शुद्ध बुद्धि ही उसका अनुभव कर सकती है. इस बयान से आपको तस्सली हो गई होगी और समझ में आ गया होगा कि इस प्रेम की इब्तदा (आरम्भ) और इन्तहा (अन्त) कहाँ तक है.

बढ़े चलो. एक ख़्याल सामने रखो. और सब ओर से आँखें मीच लो. अपनी हस्ती ख़त्म कर दो, कोई इच्छा बाक़ी न रह जाये सिवाय एक ख़्वाहिश के - उसके आगे परमात्मा को भी भुला दो, सिर्फ़ वही रह जाये. एक सन्त ने अपने मुरीद से पूछा - " तू मुझे क्या समझता है ? उसने उत्तर दिया - बराय खुदास्त (ख़ुदा की जगह . फ़रमाया - " कुफ्र अस्त (यह पाप है) . बराय ख़ुदा न भी दानम (मुझे ख़ुदा क्यों नहीं समझता), गुरु को ख़ुदा की जगह समझना शिर्क (नास्तिकता) है. सबको मिला कर एक कर लो और उसी में अपने आप को लय करो और आख़िर को वह भी छोड़ दो. जो असल है वही शेष रहेगा, बाक़ी सब ग़ायब हो जायेंगे. परमात्मा ने तुम्हें पैदा करके अपने आपको पोशीदा (अव्यक्त) और तुमको ज़ाहिर (प्रकट) कर दो. बस .

राम संदेश : जून ,१९९५.

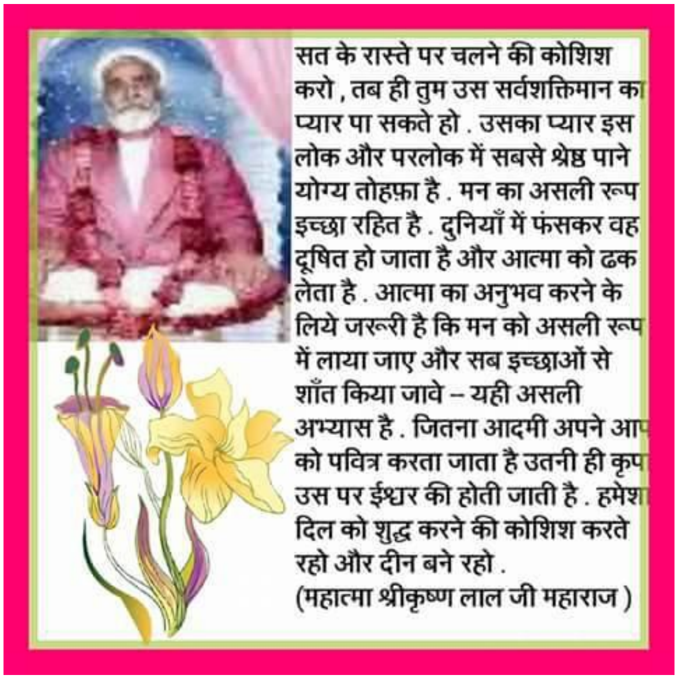

सत के रास्ते पर चलने की कोशिश करो , तब ही तुम उस सर्वशक्तिमान का प्यार पा सकते हो . उसका प्यार इस लोक और परलोक में सबसे श्रेष्ठ पाने योग्य तोहफ़ा है . मन का असली रूप इच्छा रहित है . दुनियाँ में फंसकर वह दूषित हो जाता है और आत्मा को ढक लेता है . आत्मा का अनुभव करने के लिये जरूरी है कि मन को असली रूप में लाया जाए और सब इच्छाओं से शाँत किया जावे – यही असली अभ्यास है . जितना आदमी अपने आप को पवित्र करता जाता है उतनी ही कृप उस पर ईश्वर की होती जाती है . हमेश दिल को शुद्ध करने की कोशिश करते रहो और दीन बने रहो .

(महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)